



## भारतीय संगीत के क्षेत्र में अवनद्ध वाद्य तबले का महत्त्व

Hema Dani

Kumaun University, Nainital, Uttarakhand, India

### प्रस्तावना

संगीत के क्षेत्र में अवनद्ध वाद्यो का महत्वपूर्ण स्थान है। आज सभी प्रकार की गायन विधाओं में अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग किया जा रहा है। विभिन्न गायन प्रकारों में अवनद्ध वाद्य की संगति जीवनदायिनी का कार्य करती है। आदिकाल से ही मानव किसी न किसी रूप में वाद्यों का प्रयोग करता आया है। प्रारम्भ में वाद्यों का जन्म या उनकी उत्पत्ति नैसर्गिक ध्वनि के अनुकरण व अन्य चेष्टाओं के परिणाम स्वरूप हुई तथा मानव के द्वारा किसी खोखली वस्तु के मुख पर वृक्ष की छाल या मृत जानवर की खाल को मढ़कर ताल देने हेतु वाद्यों का सृजन हुआ जो अवनद्ध वाद्य कहलाये। तबला भी एक अवनद्ध है। और यह वाद्य सदियों से हमारे संगीत के क्षेत्र में किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होता रहा है।

अवनद्ध वाद्य भावाभिव्यक्ति में सहायक होते हैं। तथा ताल वाद्यो के द्वारा विभिन्न रसों का प्रतिपादन किया जा सकता है। करुण श्रंगार वीर रौद्र भयानक आदि रसों की उत्पत्ति के लिए विभिन्न ताल वाद्यो का प्रयोग किया जाता है जैसे वीर रस के भाव की उत्पत्ति के लिए मृदंग, ढोल, नगाड़ा तथा श्रंगार रस की उत्पत्ति के लिए तबला ढोलक, ढोलकी नाल आदि वाद्यो प्रयोग किया जाता है। वाद्यों की ध्वनियाँ आन्तरिक द्वन्द, भय, चिन्ता, उत्साह, चंचलता, दृढ़ता आदि भावों को व्यक्त करने में सफल रही हैं। वाद्य हमारे जीवन की संवेदनाओं से जुड़े होते हैं। और उनकी ध्वनि जीवन के क्रियाकलापों में सम्मिलित होकर आनन्दानुभूति कराती है।

संगीत का मुख्य उद्देश्य ही जनरंजन है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य के साथ संगीत कहीं न कहीं जुड़ा ही है। मनुष्य जीवन का हर छोटा-बड़ा कृत्य, अनुष्ठान उत्सव, हर अच्छा-बुरा कार्य किसी न किसी रूप में संगीत के द्वारा ही सम्पन्न होता है। संगीत जीवन की वो अनमोल धरोहर है जो कि प्रत्येक प्राणी में विद्यमान रहती है।

भारतीय संगीत की योजना सामाजिक जीवन के हर पहलू को ध्यान में रखकर की गई है। भारतीय जीवन में संगीत कला की भूमिका शताब्दियों से आध्यात्मिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, शास्त्रीय तथा कलात्मक परम्पराओं पर आधारित है। भारतीय संस्कृति में संगीत का आरम्भ ही आध्यात्मवादी है। भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि देवतागण संगीत कला के महान उपासक थे। डमरुधारी भगवान शिवशंकर स्वयं संगीत के साक्षात् स्वरूप हैं। देवी-देवताओं में नारद, विष्णु, इन्द्र, सरस्वती, कृष्ण, अर्जुन, उर्वशी, रंभा आदि संगीत में निपुण थे और रावण भी संगीत का श्रेष्ठ ज्ञाता था। इस बात का प्रमाण हमें प्राचीन काल के पाषाण और धातु से निर्मित मूर्तियों का अवलोकन करने एवं संगीत विषयक ग्रन्थों के अध्ययन से मिलता है।

गीत, वाद्य, नृत्य तीनों संगीत कला के अन्तर्गत आते हैं तथा तीनों के सामंजस्य से आहत नाद की सम्मोहिनी शक्ति अभिव्यक्त होती है। संगीत के अन्तर्गत गीत को प्रधान और वाद्य तथा नृत्य का

कार्य गीत का उपरंजन करते हुए सम्यक बनाना है। अतः वाद्य को गीत का अनुगामी कहा गया है।

वाद्य का प्रयोजन गीत एवं नृत्य आदि की सौन्दर्याभिवृद्धि करते हुए लोकानुरंजन करना है। सभी वाद्यों का आविष्कार मूलतः संगति के लिए ही हुआ है। अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति भी इसी दृष्टि से की गई जो लय एवं ताल प्रधान होते हैं।

यदि हम अवनद्ध वाद्यों के विकास की ओर ध्यान दे तो हम देखते हैं कि आज वाद्यों का जो रूप दिखाई देता है वहा तक पहुचने में वाद्यों का एक श्रृंखलाबद्ध इतिहास रहा है। तथा प्राचीन काल से आज तक अवनद्ध वाद्यों के स्वरूप में निरन्तर परिवर्तन होते आया है और यह परिवर्तन अवनद्ध वाद्य तबले में भी देखने को मिलता है। कभी यह भूदुन्दुभि के रूप में ; काष्ठदुन्दुभि के रूप में कभी पुष्कर, मृदंग के रूप तो आज तबला वाद्य के रूप में संगीत जगत में प्रसिद्ध है।

प्रकृति में प्रत्येक वस्तु एक लय पर आधारित है। इसी से मनुष्य ने भी सबसे पहले लय को ही अपनाया। लय को प्रदर्शित करने के लिए मनुष्य ने सबसे पहले अपने हाथों से पट्टियों इत्यादि से शब्द उत्पन्न किया होगा। कुछ समय बाद ताल को प्रदर्शित करने के लिए वाद्यों में भूमिदुन्दुभि, दुन्दुभि आदि वाद्यों का निर्माण हुआ तथा इन्हीं वाद्यों के आधार पर नवीन वाद्यों का जन्म समय-समय पर होता रहा है। जब मानव ने किसी वाद्य विशेष का कुछ समय तक प्रयोग किया तथा उसमें कुछ दोषों का अनुभव भी उसने किया उन दोषों को दूर करने के लिए वाद्यों के स्वरूप में आवश्यक परिवर्तन व संशोधन किये गये और इस प्रकार नये वाद्य बने। आदि वाद्य (द्विपुष्कर) ही तबले का जन्मदाता है तथा युग परिवर्तन एवं परिस्थिति के साथ-साथ इसके स्वरूप और नाम में भी परिवर्तन होता रहा है।

भारतीय संगीत का इतिहास उतना ही प्राचीन व अनादि है जितनी कि मानव जाति, वास्तव में मानव अन्धकार के युग से संगीत के माध्यम से ही प्रकाश के युग में आया होगा तथा मानव की बुद्धि का ज्यों-ज्यों विकास हुआ होगा त्यों-त्यों उसने जीवन को सुन्दर बनाने वाली कलाओं पर ध्यान दिया होगा कि संगीत कला से वह अपने जीवन को सुन्दर और कलात्मक बना सकता है। मानव के आचार एवं विचारों के परिवर्तन के साथ-साथ संगीत में भी परिवर्तन होता गया। त्योंहारों या सांगीतिक अनुष्ठानों में एकत्रित होकर सामूहिक रूप से गायन करने की प्रथा प्रारम्भ हुई। गायन के साथ कुछ ताल वाद्यों की आवश्यकता पड़ी मंजीरा, ढोल, दुन्दुभि आदि वाद्यों का जन्म इसी विकास प्रक्रिया में हुआ।

भारतीय संगीत के ऐतिहासिक पहलुओं, काल के विभिन्न खण्डों प्रागैतिहासिक, वैदिक, रामायण, महाभारत कालीन संगीत में अवनद्ध वाद्यों की चर्चा की गयी है। इन सभी कालों में जीवन के हर क्षेत्र में जैसे जन्मोत्सव, स्वागत समारोह, राज्याभिषेक, उद्घोषणा, सेना संगठन, युद्ध के आरम्भ मध्य व अन्त सभी में अवनद्ध वाद्यों का

विशिष्ट स्थान रहा है तथा अनेक स्थानों पर विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भी अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख अनेक बार हुआ है। जहाँ संगीत है, वहाँ अवनद्ध वाद्यों का विशेष स्थान और उनकी उपयोगिता स्वतः ही हो जाती है।

बौद्ध तथा जैन काल में अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख मंगलकार्यों, उत्सवों, अनुष्ठानों आदि में मिलता है। बौद्ध ग्रन्थों में स्पष्ट है, कि तत्कालीन सम्पन्न परिवारों में संगीत शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था बौद्ध तथा जैन काल में संगीत का विपुल प्रचार उसके महत्व पर प्रकाश डालता है।

भरत ने नाट्य परम्परा में संगीत को मुख्य तत्व के रूप में स्वीकार किया है तथा त्रिपुष्कर (मृदंग) को सर्वश्रेष्ठ वाद्य माना है। आधुनिक तालवाद्यों की उत्पत्ति तथा विकास में हमें भरतकालीन त्रिपुष्कर के तीनों हिस्सों का प्रभुत्व देखने को मिलता है, जैसे— ढोलक, पखावज, खोल आदि के विकास में आंकिक का महत्व दिखाई देता है तो तबले—बायें पर ऊर्ध्वक और आलिंग्यक का प्रभाव दिखाई देता है।

प्राचीनकाल से मध्यकाल तक के भारतीय अवनद्ध वाद्यों की विविधता और सार्वभौमिकता विश्व के अवनद्ध वाद्यों में अद्वितीय है। भारतीय अवनद्ध वाद्यों के रूप तथा उनकी वादन—सांग्रगी, जो मूलरूप में ही पर्याप्त विकसित थी। क्रमशः और अधिक विकसित हो गयी।

अवनद्ध वाद्य देश भर में प्रचलित है। जिनमें द्विमुखी वाद्य मृदंग, ढोलक, खोल, डमरू मुरज मर्दल डिमडिम आदि और एकमुखीवाद्य खंजरी, चंग, डफ, दुन्दुभि, नगाड़ा तबला तथा संयुक्त वाद्य नगाड़ा तबला आदि अनेक भेद देखने को मिलते हैं। इनमें से अधिकांश वाद्य भारत की अपनी निधि है। विशेषतया वे वाद्य जिनमें किसी प्रकार के लेप का प्रयोग होता है। विशुद्ध भारतीय है। अवनद्ध वाद्यों में सम्प्रति तबला का सर्वाधिक प्रचार है तबला का साहित्य भी अन्य किसी अवनद्ध वाद्य के साहित्य से विशाल है।

तबला द्विअंगी वाद्य है किन्तु जोड़ी के रूप में दो 'मुखों' पर बजाया जाने वाले वाद्य होने पर भी, प्रत्येक नग स्वयं में 'एकमुखी' होने के कारण संरचना की दृष्टि से ये वाद्य "एकमुखी" ही है। दांये तबले का अंग लकड़ी का तथा बांया मिट्टी, धातु अथवा कभी—कभी लकड़ी का भी होता। इसका

मुख चमड़े से मढ़ा हुआ होता है इसमें चांटी, लव व स्याही होते हैं। दाहिने तबले के स्वर को ऊँचा या नीचा करने के लिए गट्टों का प्रयोग किया जाता है, इस वाद्य का प्रयोग संगत एवं स्वतन्त्र वादन दोनों में किया जाता है। वर्तमान में शास्त्रीय संगीत, लोकसंगीत, आदि में इस वाद्य की सुमधुर संगति सुनी जा सकती है। इस वाद्य में कई गुण विद्यमान है।

आदि वाद्य पुष्कर (मृदंग) ही तबले का जन्मदाता है, जो मध्यकालीन द्विपुष्कर वाद्य 'उर्ध्वक' व आलिंग्यक के रूप में अनवरत अपनी संगीत पथ की हजारों वर्ष की यात्रा करते हुए आज के सुप्रतिष्ठित स्वरूप को पा सका है। 18 वी शताब्दी में ही ख्याल, दुमरी, कथक नृत्य तथा सितार के साथ तबले को भी राज दरबार में प्रोत्साहन मिला। तथा कुशल तबला वादकों के अथक परिश्रम से तबला उत्कर्ष में आ गया।

इस वाद्य में सुधार लाने एवं उसे प्रचारित तथा प्रसारित करने का श्रेय उस्ताद सिद्दार खों को दिया जाना युक्ति संगत है। उस्ताद सिद्दार खों ने ही दिल्ली घराने की नींव डाली तथा उनकी वंश वंशधर परम्परा ने पूरे देश का भ्रमण कर वहाँ की सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप अपनी मौलिक वादन विशेषता के अनुरूप विभिन्न घरानों की स्थापना की। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि बोलो, बंदिशों की मौलिकता एवं

विश्वसनीयता ने तबले में विभिन्न शैली के बाजो एवं घरानों की सृष्टि की है। तबले के मूल स्वरूप को एक जैसा रखते हुए अलग—अलग आचार्यों ने उसकी विशेषता को, वादन आरम्भ करने की शैली, विशेष प्रकार के बोलों की प्रचुरता, बोलों के निकास की दृष्टि से भिन्न—भिन्न वादन शैलियों का निर्माण किया। जिसके फलस्वरूप अवनद्ध वाद्य तबले में नयी विशेषताओं और नये तत्वों का समावेश हुआ तथा अवनद्ध वाद्य तबले की यह परम्परा अधिकाधिक समृद्ध हुई।

भारतीय संगीत में गायन, वादन या नृत्य सभी के साथ अधिकतर तबला नामक ताल वाद्य बजाया जाता है। अतः यह संगीत का एक अनिवार्य अंग है। अपनी मुलायम वादन शैली और तकनीकी विशेषताओं के कारण वह हर प्रकार के गायन—वादन—नृत्य की संगति के लिए उपयुक्त सिद्ध हुआ है। तबले का एक यह भी सौभाग्य रहा है कि उसके साथ निष्ठावान् तबला—वादकों का एक ऐसा वर्ग हमेशा ही जुड़ा रहा, जिनके सनिष्ठ प्रयत्नों के फलस्वरूप समाज में तबले के प्रति, प्रेम, आदर, चाहत और समझ बढ़ने लगी। इस तरह कोठों पर रहने वाला यह वाद्य आज भारतीय संगीत का श्रृंगार बन गया है और देश—विदेश में प्रसिद्धि प्राप्त कर रहा है।

आज वर्तमान में नृत्य के साथ तबला वादन की संगति अत्यन्त लोकप्रिय होने से, वर्तमान में प्रायः उसके साथ तबला संगति ही होती है। नृत्य की संगति में तबला वादक गत, परन, टुकड़े, तिहाई, इत्यादि का भरपूर प्रयोग करते हुए अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करता है। तबले के दो अंग बायाँ डग्गा एवं दायाँ तबला मादा एवं नर का रूप है। इन दोनों के सम्बन्ध से श्रृंगार पूर्ण बोलों की उत्पत्ति होती है। जो उपांगों के संचालन में आकर्षण उत्पन्न करता है।

तबले पर नव रसों की निष्पत्ति भी सम्भव है क्योंकि यह एक समुन्नत वाद्य है। तभी तो प्राचीन वाद्य त्रिपुष्कर, द्विपुष्कर, मृदंग, आधुनिक वाद्य पखावज ढोलक नाल नम्कारा ढफ, भगवान शंकर का डमरू आदि से लेकर पश्चिमी तालवाद्य कांगो—वांगों ड्रम आदि तक का काम समयानुसार संगीत के कार्यक्रमों में तबले से लिया जाता है। रस निष्पत्ति का माध्यम शब्द है। मात्र शब्द बदल जाने पर रस बदल जाते हैं। इस प्रकार विभिन्न वाद्यों की ध्वनियाँ विभिन्न रसों की उत्पत्ति में प्रयोग किये जाते हैं। वाद्यों की ध्वनियाँ तबले पर निकाली जा सकती है।

गायन शैली, वादन शैली, नृत्य शैली की सुन्दरता बढ़ाने के लिए तबला को जितनी सफलता मिली है। उतनी सफलता किसी भी अन्य वाद्य को नहीं मिली। भारत में केवल तबले का नाम और उसकी संगति का क्षेत्रबदलता रहा है। भरत काल में यह त्रिपुष्कर नाम से लोकप्रियता के शीर्ष पर था तो शारंगदेव (13 वीं सदी) के समय अपने विशाल आकार और मिट्टी द्वारा निर्मित होने के कारण यह लोगों को अनुपयोगी प्रतीत होने लगा। (14वीं) शताब्दी में यह संगीत के निम्नवर्गीय व्यवसायियों से जा जुड़ा और आज के युग का यह सर्वाधिक लोकप्रिय प्रतिष्ठित वाद्य है। जिसकी माँग शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम, फिल्मी एवं लोक संगीत हर क्षेत्र में है।

तबले को यदि भावानुकूल संगति वाद्य कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। भारतीय संगीत के इतिहास में एक ऐसा भी समय आया कि उसमें अश्लीलता एवं विलासिता का भाव आ गया। गाने, नाचने व बजाने वालों को समाज में आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था, लेकिन शिक्षा के प्रचार—प्रसार तबला की लोकप्रियता एवं तबला कलाकारों की उत्कृष्टता के कारण तबला वादकों को सम्मान मिला। आज तबला कला विश्वस्तर पर प्रतिष्ठित हो रही है। अतः इसकी प्रगति के आधार पर हम कह सकते हैं कि तबला वादकों का भविष्य उज्ज्वल है। आवश्यकता है कि इसके विकास मार्ग में

जो बाधाएँ है उन्हें दूर किया जाए।

### सन्दर्भ

1. श्रीवास्तव, डॉ० धर्मावती प्राचीन भारत में संगीत भारतीय विद्याप्रकाशन वाराणसी 4,11,15 1967
2. डॉ० ठाकुर सिंह जयदेव भारतीय संगीत का इतिहास विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी 30, 154,158 1994
3. डॉ० भार्गव, अंजना भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर नई दिल्ली 7,8,11 2002
4. मिस्त्री, डॉ० आबान ई० पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें पं० केकी० एस० जिजिना स्वर साधना समिति मुम्बई 116, 117 118,119, 1984
5. शुक्ल, डॉ० योगमाया तबले का उद्गम विकास और वादन शैलियाँ हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय ई०ए०/6 मॉडल टाउन दिल्ली द्वारा प्रकाशित 58, 80, 88, 167, 171 1987
6. पं० मिश्र, लालमणि भारतीय संगीत वाद्य भारतीय ज्ञानपीठ बी/45-47 कनाट प्लेस नई दिल्ली 11,14,15 1973
7. पं० वशिष्ठ, सत्यनारायण तबले पर दिल्ली और पूरब संगीत कार्यालय हाथरस 6,7,8 1969
8. परांजये, श्रीधर शरच्चन्द्र भारतीय संगीत का इतिहास चैखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, राजकमल प्रकाशन 10,17,18 1970
9. आचार्य बृहस्पति संगीत चिंतमणी संगीत कार्यालय हाथरस 5, 4, 11 1989
10. रामअवतार, संगीताचार्य वीर भारतीय संगीत वीर संगीत प्रकाशन लारेंस रोड, नई दिल्ली 2,3 1986